स्मृति

(षोडश सर्ग)

रोला छन्द

सुन हरि का आदेश, देशना[१] मन में धर के।
एक नया विश्वास, स्वयं में अनुभव करके।
द्रुत महेन्द्रगिरि ओर चले मन अति हर्षित था।
जन्मभूमि प्रति पुनः, द्रौणिमन आकर्षित था।।०१।।

उत्तराभिमुख चले द्रौणि धुर दक्षिण तट से।
गगनमार्ग से मारुतिवत उत्थित थे झट से।
चले देखते शैल अनावृत भू तनु[२] सरिता।
रही कहाँ वह भूमि शस्य - श्यामल शुभहरिता।।०२।।

देख - देख वे दृश्य भाव उठते थे मन में।
घूम रहा हूँ व्यर्थ भरत - भू के निर्जन में।
भूधर सरितादिक को करते थे सम्बोधित।
उर का गहन विषाद कराते ज्यों उद्‌बोधित।।०३।।

मराल छन्द

कभी [३]पाटीरगन्धयुतवाह[४],
ग्रहण कर [५]करिमदपरिमल तीक्ष्ण।
चुरा निर्झरजलशीकरशीत,
पथिक श्रमहरता सघन अभीक्ष्ण[६]।
कृष्णगिरिता[७] है अब प्रत्यक्ष,
न आवश्यक इसकी पहचान।
सानु लगते भूतल से उठे,
तीक्ष्ण कृष्णायस[८] शूल समान।।०४।।

हरित चित्रित - दुकूल विप्रयुक्त[९],
दूँढते क्या वनश्री अभिराम ।
झाँकते आकुल और अधीर,
नीरनिधि में आतुर अविराम ।
देख दुहिता[१०] का अहित अमेय,
हो गए गुरू दुःख से चिरमौन ।
सह्य[११] का है असह्य उत्ताप,
जानता मुझसे बढ़कर कौन ।।०५।।

तुङ्गता[१२] त्याग गयी है तुङ्ग[१३],
छोड़ भू भद्रा[१४] गयी सवेग ।
विवश हो अनुजाद्वय विप्रलम्भ[१५],
सहन करती कृष्णा सोद्वेग ।
असित[१६] सलिला कृष्णा[१७] अतिम्लान,
सार्थसंज्ञा हो लगती सुप्त ।
हरित[१८] - हरिजा अनुहारिणि[१९] बनीं,
कान्तछाविधारिणि या कि अगुप्त ।।०६।।

जिन्होंने जीता था यवद्वीप[२०],
सुमात्रा बालि स्याम[२१] कम्बोज[२२] ।
रहा फैलाता सौरभ विपुल ,
भरतभू संस्कृति का अम्भोज[२३] ।
महामन्दिर मन्दरवत[२४] तुंग,
सुनिर्मित करवाते थे भूप ।
पांड्य पल्लव चोलों का देश,
खो चुका कैसे दिव्य स्वरूप ।।०७।।

यही क्या ऋष्यमूक नगसानु,
जहाँ करते मतंग ऋषि वास ।
बली भी बालि न आता यहाँ,
दिया जो था ऋषिवर ने शाप ।
कभी शरणागत थे सुग्रीव,
राम रामानुज से की प्रीति ।
पवनसुत का ले लिया सहाय,
मिटी तब अग्रज से घनभीति ।।०८।।

गोद में कभी खिलाती कलभ[२५]
आज बस लुढ़काती पाषाण ।
गुप्त है गोदावरि गुरू शोक,
मन्दरय[२६] ढोती कथमपि प्राण ।
प्रवासी थे जब रघुकुलतिलक,
किया था पञ्चवटी में वास ।
याद क्या करतीं गोदावरी,
जनकतनया की चरण सुवास ।।०६।।

राजपुत्री हरिभामा[२७] बनी,
यहीं था वैभवयुक्त विदर्भ ।
भीमजा[२८] दमयंती सी हुई,
वहाँ अब नहीं बचे हैं दर्भ[२६] ।
ज्ञान - विग्रह ज्ञानेश्वर हुए,
तुका के मुखरित जहाँ अभंग ।
भूमि वह ज्यों मूर्च्छामय पड़ी,
पूर्व स्मृतियों से हुई असंग ।।१०।।

नर्मदा किसको देवे नर्म[३०],
मर्म नरमति का सकी न जान।
अमरकण्टक से झरता नीर,
रूदनरत गिरि होता अनुमान।
सुनो रेवा[३१] तुम यद्यपि म्लान,
न भूलो वह स्वर्णिम इतिहास।
तुम्हारे तीर हुआ बलिबन्ध[३२],
छुआ वामन ने था आकाश।।११।।

कपिल जाबालि गौड़पादादि,
सदा पीते थे पावन नीर।
सहस्त्रार्जुन भुज छेदन किया,
परशुधर ने सकोप तव तीर।
तटस्थादरी - मध्यकृतध्यान,
मिले गुरुवर गोविंद[३३] समान।
विशिष्टा शिव गुरु का वह बाल,
बना शंकर आचार्य महान।।१२।।

हर्ष का दक्षिणाभिमुख वेग,
तुम्हीं तक आकर रुका प्रभाव।
पुलक तनु पुलकेशी था वीर,
वीरता का कब रहा अभाव।
शैल को भी करता था चूर्ण,
कहाँ वह गया वेग उद्दाम।
हुए क्या ज्योतिर्लिङ्ग तटस्थ,
दीखतीं तनुवसु[३४] शिथिला क्षाम[३५]।।१३।।

प्रतीक्षारत जिनकी चिरकाल,
नहीं आएंगे पुनः ऋषीश[३६] ।
तुम्हें है ज्ञात तदपि हे विन्ध्य!
खड़े क्यों मौन धार नतशीश ।
सोचते क्या सब भूभृत[३७] गए,
बचा मैं एकाकी हतभाग्य ।
समुन्नति की परिणति को देख,
उठा शायद उर में वैराग्य ।।१४।।

भर्तृहरि से थे हुए नरेश,
महाकालेश्वर का आवास ।
देख कर निर्जन हुई विषण्ण,
छोड़ती है क्षिप्रा निःश्वास ।
याद तुमको क्या नहीं अवन्ति,
विक्रमादित्य और नवरत्न ।
यहीं हरि[३८] बने मनुज के शिष्य,
करी नरलीला यहाँ सयत्न ।।१५।।

शारदा पूजक लक्ष्मीपुत्र,
धरा पर धारा में उद्भूत ।
मुञ्ज के बोधक गुण - आगार,
भोज की अब तक कीर्ति प्रभूत ।
चारुचित्रण था जिसका किया,
स्वयं कवि कुलगुरु ने विस्तीर्ण ।
देख कर विदिशा के अवशेष,
हृदय हो जाता तत्क्षण दीर्ण[३९] ।।१६।।

कृष्ण के जाते ही कर लिया,
द्वारका पर अर्णव अधिकार ।
सबल गोप्ता[४०] के हटते हुआ,
सदा ही रक्षित का अपकार[४१] ।
न ढोओ पापबोध को और,
अकेले जग में नहीं प्रभास[४२] ।
मनुज क्षयकारी बहु रणक्षेत्र,
कराते आए घृणित विनाश ।।१७।।

यहीं इस पत्तन में जगवन्द्य,
महावीरोपम अमित प्रभाव ।
अहिंसा सत्याग्रह आयुधी,
हुए थे मोहन संत स्वभाव ।
दासता की काटी बेड़ियाँ,
भरत भू को करवाया मुक्त ।
दीनजन सेवी अपरिग्रही,
करी जनता जाग्रत चिरसुप्त ।।१८।।

कहाँ वह भीनमाल[४३] का देश,
चैद्यवध[४४] कर्ता माघ पुनीत ।
कहाँ हैं भट्टि[४५] बलभि है कहाँ,
हुआ रावणवध जहाँ प्रणीत ।
यशोधर्माकृत[४६] - मन्दित - शौर्य,
आततायी थे सभी निरस्त ।
आज वह मन्दसौरपुर कहाँ,
अर्कसम पौरुष गया समस्त ।।१९।।

अरे चर्मण्वति[४७] क्यों व्युत्पत्ति,
नाम की फिर करतीं अभिव्यक्त ।
बहाकर इतने नर पशु देह,
देह भवदीया है आरक्त ।
रहा हो रन्तिदेव[४८] को काम्य,
यज्ञबलिपशुदृति[४९] वाहक दृश्य ।
मनुजकृत यह निर्घृण[५०] नरमेध,
पिशाचों तक को यहाँ अदृश्य ।।२०।।

प्रवाहित अर्णवसम जलराशि,
महानदि ज्यों दण्डक[५१] का सार ।
फल्गु[५२] सरिता होकर कृशकाय,
लिया क्या फिर से शैशव धार ।
प्रयोजनहीना तुम वैतरणि[५३],
हो चुकीं जीवन-लय के साथ ।
पारगमनार्थ न कोई शेष,
यही क्या साल रहा अवसाद ।।२१।।

चण्डता त्याग करुणरसमूर्ति,
हुए थे जिससे लड़कर मौर्य ।
पड़े क्षत-विक्षत अरे कलिंग!
कहाँ खो गया तुम्हारा शौर्य ।
सौर[५४] स्यन्दन जड़ता को प्राप्त,
हुए क्या उदासीन जगदीश[५५] ।
धार कर क्या समाधि भृगुनाथ[५६],
लोकचर्या से हुए अतीत ।।२२।।

नाम जिनके कारण रणछोड़[57],
पड़ा अच्युत का परम विचित्र ।
बहुल-बन्दीकृतनृप नरराज,
जहाँ थे राजित भीम-अमित्र[58] ।
और फिर अपरकाल में जहाँ,
कोषकारक थे बलयुत नन्द ।
मौर्य ने कर जिनका क्षय दिया,
चणकसुत[59] को अपार आनन्द ।।२३।।

मगध तुम थे सत्ता के केन्द्र,
ऋद्धि[60] बल विद्या के आधान[61] ।
शौण[62] गङ्गा ने मिलकर किया,
युगों तक तेरा कीर्ति बखान ।
आज मन्थरगति बहता शोण,
शोणता[63] करता है अभिव्यक्त ।
विकल है रोष भरा यह वाह,
चित्त इसका अतीत आसक्त ।।२४।।

यहाँ उतरी थी द्युति वह दिव्य,
करी जिसने नरता उद्‌बुद्ध ।
बनाने जीवन को सिद्धार्थ[64],
हुए शुद्धोधनसुत[65] से बुद्ध ।
लुप्तिपथगा लुम्बिनि[66] हो गई,
गया का गया समूचा सत्व ।
कहाँ अब सारनाथ का सार,
न मज्झिम[67] अब निकाय का तत्व ।।२५।।

वीरता के सच्चे आदर्श,
तितिक्षा[६८] के अतुल्य प्रतिमान ।
दे गए जग को वैशालीय[६९],
भूतिप्रद अर्जित केवल[७०] ज्ञान ।
धन्य त्रिशला माता हो गई,
पिता सिद्धार्थ[७१] हुए सिद्धार्थ[७२] ।
वर्धमाना पावनता हुई,
तिरस्कृत कर जगजन्य पदार्थ ।।२६।।

सिखा कर पंचमहाव्रत व्रती,
कर गए निश्चित शांति विकास ।
वरंण हिंसा तृष्णा का किया,
मूढ़ मानव कर गए विनाश ।
सुरभिदा चम्पा[७३] चम्पापुरी,
कभी श्रीमण्डित यहाँ वदान्य।
देखती रविसुत[७४] को खेलता,
किए जिसने हरि वचन अमान्य ।।२७।।

प्रजानिज नामधेय अनुरूप,
करी ऐसे थे भूप अशोक।
त्याग असि हरा लोक का त्रास,
विश्व में फैलाया आलोक।
किन्तु बोलो तुम पाटिलपुत्र,
राजगृह बनता क्यों श्मशान ।
घुमड़-घन घिरे नाश के घोर,
पराजित था आलोक महान ।।२८।।

तुम्हारे पूर्व अधिप यदि जनक,
कहोडाङ्गज[७५] गृहीत गुरूज्ञान ।
वीतरागी हो बने विदेह,
साधु था उनका बहु सम्मान ।
नहीं अनुकरण तुम्हारा श्लाघ्य,
हुई मिथिले! क्यों आज विदेह ।
प्राणधारी जब तक है शेष,
शोभती है तब तक ही देह ।।२६।।

मुषित हरिताम्बर शैल समूह,
देखकर यह होता है ऊह[७६] ।
असम की प्रकृत[७७] असमता प्रकट,
कराने हेतु रचा यह व्यूह ।
वरारोहा[७८] वसुधा रमणीय,
जराजीर्णा सी आभाहीन ।
वलितनागावलि[७९] वलिताननना[८०],
विगत हैं सघन पयोधर[८१] पीन ।।३०।।

सुनो हे ब्रह्मपुत्र! नद तुम्हीं,
बचे हो भू पर ब्रह्मापुत्र ।
काल कवलित हैं अन्य समस्त,
प्रसभ[८२]प्रेषित चिरकाल अमुत्र[८३] ।
शौर्य के विग्रह वे भगदत्त,
अग्रणी यूथप बल आगार ।
तुम्हारे सुतवत् थे कुरुसखा,
महारण में खोया आकार ।।३१।।

उषा आती अब भी प्रत्यूष[८४],
देखती रहती सूनी राह ।
शून्यता ही प्रसरित अनिरुद्ध[८५],
नहीं जाती पर प्रिय की चाह ।
बाणवत अर्तिद[८६] है नैराश्य,
विगतऊष्मा-शोणित पुर खिन्न ।
प्राग्ज्योतिष[८७] है तम से ढँका,
आज लगता है परम विपन्न ।।३२।।

भिन्न उर से निकला जो शोण[८८],
बनी लोहित सरिता उद्दाम ।
स्वर्णश्री धनश्री धरणी त्याग,
गई अपने विभूतिमय धाम ।
परशु प्रक्षालन से लोहिता
पड़ा था तब लोहित अभिधान ।
अन्य सरिताएँ लोहित करीं,
मनुज ने कर नरता अवसान ।।३३।।

कौन पूर्वाशा[९०] के अतिरिक्त,
उषा का कर सकता है दान ।
प्राग्ज्योतिषता जिसको प्राप्त,
तिमिर से बचा न पाया मान ।
नरकरिपु[९१] ने नरकासुर मार,
वन्दिनी बालाएँ की मुक्त ।
बने सोलह सहस्त्र पति त्वरित,
रहे पर परम योग के युक्त ।।३४।।

अरी काशी तुमने क्यों लखा,
विवश हो सत्वों का संहार ।
विश्वनाथोषित[९२] होकर किया,
अनाथावत तुमने व्यवहार ।
रहा कोई न पाश से बद्ध,
शंभु छोड़ो अब पशुपति[९३] नाम ।
भस्मप्रिय अब पुष्फल[९४] है भस्म,
भूमि सारी विस्तृत श्मसान ।।३५।।

सर्व व्यापकता रघुकुलतिलक,
तुम्हारी उपजाती सन्देह ।
प्रश्नचिह्नों से हुआ परीत[९५],
तुम्हारा त्रेतायुग का गेह ।
मनीषी कलि के कल तक यहाँ,
खोजते मृण्मय ठोस प्रमाण ।
अयोध्या[९६] थी अब योध्या बनीं,
न मति से हुआ भावना-त्राण ।।३६।।

अरी सरयू पुरुषोत्तम गए,
तुम्हारे पथ से ही निजधाम ।
उन्हें लौटाओ फिर से खिले,
जगत का गत सौरभ आराम[९७] ।
विगत गोवृन्द गोमती[९८] आज,
पंक-बहुला दिखती श्रीहीन ।
अगोचर जल जलचर गोहीन[९९],
गोमती[१००] ही बनकर है दीन ।।३७।।

तरणिजा[१०१] लगे तरस्वी[१०२] तार्क्ष्य[१०३],
तुम्हें यदि आयत[१०४] अजगर तुल्य ।
चले आओ इस भ्रम में तात!
देख मैं पाऊँ मोद अतुल्य ।
कालिदह में कूदे हरि त्वरित,
तुम्हें करने रविजा[१०५] विषमुक्त ।
पुनः कलि में विषयुक्ता हुई,
करे अब कौन विमल विषयुक्त[१०६] ।।३८।।

कभी अधिपति थे तव शत्रुघ्न,
लवणमुक्ता मधुरा अभिधेय।
बनीं मथुरा कंसार्दित भीरू,
लगी हरि को लीला अभिनेय ।
सहे रिपु[१०७] के आघात असंख्य,
कृष्ण तक ने छोड़ी असहाय ।
छोड़ते आत्मीय तक मझधार,
उपस्थित होता घोर अपाय[१०८] ।।३९।।

कपिल कोपानल में क्षयसात,
सगरसुत तारे साठ हजार ।
मन्द बहतीं भागीरथि कहो,
मौन क्यों आज लिया है धार।
सकल भूताशन[१०९] आयुधजात,
हुताशन[११०] हुआ दग्ध कर शान्त।
नहीं तुम क्या तारोगी इन्हें,
हो चुकीं क्या इतनी परिश्रान्त।।४०।।

भृगूद्वह[111] ने सर पंचक रचे,
समंतक[112] वैरि रुधिर से पूर्ण ।
हुआ फिर भारत युद्ध महान,
नाश आयोजन वह सम्पूर्ण ।
और सङ्गरत्रय[113] कलि में हुए,
विकल वसुमति[114] ने देखा नाश ।
अन्त में खण्ड प्रलय आ गया,
बुद्धि ने किया हृदय उपहास ।।४१।।

बन गए परम सहायक मनुज,
विवर्धित हुआ थार-साम्राज्य ।
सुविस्तृत सिकता सागर तप्त,
अवनि पर फैला है अविभाज्य ।
जहाँ पर चलता है अभिमन्यु,
वेगयुत पवन तप्त निर्बाध ।
चरम उन्नति की पूरी हुई,
मूढ़ मानव की ऐसे साध ।।४२।।

सिन्धुसम थी जिसकी जलराशि,
सिन्धु वह भूतल से है लुप्त ।
सरस्वति[115] की अनुगामिनि बनीं,
गयी पाताल लोक हो गुप्त ।
विगत नीरा तटिनीं[116] सब हुई,
पंचनद[117] होता है प्रतिभात ।
निशितनख[118]-नरहरि[119]-दारितउदर,
वितत वसुधा पर व्यसु[120] दनुजात[121] ।।४३।।

बने प्रतियोगी अति दुर्दान्त,
आधुनिकता का धारें वेश ।
अन्त में कर बैठे वह भूल,
धरा निर्जीव हुई निःशेष ।
विगत है हिममय शुभ्र किरीट,
हिमालय मात्र रूढ़िगत नाम ।
गयी सुरसरि[१२२] भी तज मेदिनी,
पुनः वह सत्य हुआ अभिधान ।।४४।।

न अम्बुद अब घिरते हैं कहीं,
करायें किसको वे पयपान ।
कभी भेजेंगे घन शतमन्यु[१२३],
मात्र पुष्कर[१२४] संवर्त समान ।
शिखण्डी[१२५] अब अर्जुनपृष्ठस्थ[१२६],
बुलाता नहीं व्यग्र हो कन्द ।
कुहू[१२७] बस अमा निशा पर्याय,
कुहूरव अब है कहाँ अमन्द ।।४५।।

नहीं घन करते भीम[१२८] निघोष,
न अर्जुन अब कृष्णा के तीर ।
नकुल-कुल[१२९] नहीं नहीं नकुलारि,
कहाँ अब रहे सुयोधन[१३०] वीर ।
न वसु[१३१] है अब वसुधा पर पृषत[१३२],
शकुनि[१३३] का स्वर हो गया अतीत ।
धर्म, धर्मज, धर्मानुग सभी,
गए हो गई काल की जीत ।।४६।।

रोला छन्द

पुनः देख लूँ देश, जहाँ पर गंगद्वार था ।
नगरी थी अहिक्षत्र, प्रजा का अमित प्यार था ।
गजपुर था काम्पिल्य, प्रवाहित थी सुरसरिता ।
आज वहाँ पर मुझे, मिलेगी विस्तृत सिकता[१३४] ।।४७।।

पहुँचे गङ्गाद्वार, नीर नयनों में छाया ।
नहीं बची थी वहाँ, सघन कुञ्जों की छाया ।
विस्तृत तट के बीच, मन्द मन्दाकिनि वहती ।
कलकल ध्वनि से करुण, कथा संसृति की कहती ।।४८।।

यहीं कहीं पर कभी पूत वह पर्णकुटी थी ।
यहाँ आम्र की प्रिया, प्रियंगु लता लिपटी थी ।
यहाँ उछलते चपल, सुचित्रित मृग के छौने ।
यहाँ बैठ मैं कभी, बनाता मृदा-खिलौने ।।४६।।

यहाँ विल्वतरु तले, लगा था कण्टक पग में ।
रोदन सुनकर दौड़, जननि आयी इस मग में ।
हरी वेदना त्वरित, उठा मुझको बाँहों में ।
कहा न खेला करो, कण्टकित इन राहों में ।।५०।।

संध्या करते तात, पास में बैठा रहता ।
तोतल वाणी बोल, मन्त्र था मैं भी कहता ।
पर मिष्टान्ननिबद्ध, दृष्टि रहती थी मेरी ।
लगता था कर रहे, पिता पूजा में देरी ।।५१।।

धान्य खिलाता कभी, गिलहरी को मैं जाकर ।
होता था अति मुदित, कपोती छत पर पाकर ।
पालित से शुक, मोर, अभय आश्रम में फिरते ।
कपि उत्पात स्वरूप, पके जामुन थे गिरते ।।५२।।

तात-अस्त्र-भयभीत, व्याघ्र उस ओर न आते ।
निर्भय अन्य तृणाद, विचरते मोद मनाते ।
भुजग-विरुद्ध-सचेत, नकुल रहते थे रक्षी ।
नर्तक कुशल मयूर, गानपटु कोकिल पक्षी ।।५३।।

रहती आश्रमभूमि, सुवासित होमगन्ध से ।
गुञ्जित होती नित्य, लयात्मक सामछन्द से।
कानन से वटु समुद, आहरित कर समिधाएं।
विद्या की वे सरुचि सीखते विविध विधाएं ।।५४।।

तात सभी के पिता, और गुरुमाता माता ।
रहते थे सब छात्र, परस्पर बनकर भ्राता।
क्रीड़ा करता मुदित, अमल वात्सल्य जगाता ।
निश्छल सबका स्नेह, सदा पुष्कल मैं पाता ।।५५।।

शास्त्र ज्ञान के साथ, शस्त्रविद्या पर बल था ।
ज्ञानदीप्ति के साथ, वहाँ पुरुषार्थ अनल था ।
कहते थे आचार्य, रहे यदि मृदुवपुधारी ।
नहीं आर्य कहलाने, के तुम हो अधिकारी ।।५६।।

चिन्तन और विकास, सर्जना सुख श्रीमण्डन ।
होते सम्भव तभी, शान्ति का हो न विखण्डन।
यदि न बनोगे तात, धर्म हित सुदृढ़ सुरक्षा ।
इस समाज की कौन करेगा अरि से रक्षा।।५७।।

जो भी करने बढ़े, पूज्य संस्कृति का दूषण।
आशु बाण हो तीक्ष्ण, आसुरी-ग्रीवा-भूषण ।
अनाचार के हेतु, बढ़ रहे कुटिल करों को ।
काट गिराने हेतु, रखो तैयार शरों को ।।५८।।

कठिन तपस्या हेतु, तात प्रतिमान[१३५] सदा थे ।
दुरतिक्रम[१३६] अभ्यास, हेतु उपमान सदा थे ।
आयुधगुरु शीर्षस्थ, मान्य भारत-भू के थे ।
आयुध होते धन्य, स्वयं उनको छू के थे ।।५६।।

नहीं सहन कर पाए, दुर्बल वह अनुशासन ।
क्रमशः निर्जन हुआ, विशद विद्या का आसन ।
थे आश्रम कुछ और, जहाँ सुख था सुविधा थी ।
राज्याश्रय था प्राप्त, नहीं कोई दुविधा थी ।।६०।।

अन्तेवासी[१३७] गये, कुटी पूरी थी सूनी ।
और तात की व्यथा, नित्य होती थी दूनी ।
कहते थे हो खिन्न, ज्ञान के पात्र कहाँ हैं ।
जिज्ञासा से पूर्ण, उद्यमी छात्र कहाँ हैं ।।६१।।

क्या होंगी अब लुप्त, कष्टसाध्या विद्याएं ।
होंगी मेरे साथ, विदा क्या विविध विधाएं ।
रुकता यदि सुप्रसार, जगत में ज्ञान ध्यान का ।
यात्री होगा मनुज, अन्ततः कृष्णयान[१३८] का ।।६२।।

मलिन हुई चतुरग्नि, परम सादित[१३९] गुरुवर थे ।
अवसादों ने बना लिए आश्रम में घर थे ।
रही न गो भी एक, कहाँ अब क्षीर धरा था ।
मुझे क्षुधातुर देख, जननि-दृगनीर भरा था ।।६३।।

आर्यपुत्र! यवचूर्ण[१४०], सलिल में निभृत मिलाकर ।
मृषावादिनी बनी, पिलाती दूध बताकर ।
कब तक छलती रहूँ, तनय को तुम्हीं बताओ ।
हठ करता पय हेतु, बाल को तुम समझाओ ।।६४।।

चले कुटी से दूर, तात फिर भारी मन से ।
मानो हुए वियुक्त प्राण माता के तन से ।
बोले सुत के हेतु, गाय लेकर आऊँगा ।
कुछ होकर समृद्ध, तुम्हें मुख दिखलाऊँगा ।।६५।।

आया उनको ध्यान, बालपन के साथी का ।
गुरुकुल में जो पढ़ा, उसी प्रिय सहपाठी का ।
पाञ्चालों का अधिप, आज वह श्रीराजित है ।
शौर्य-सम्पदायुक्त, राजसत्ता-भ्राजित है ।।६६।।

शोभित था काम्पिल्य, नगर अति वैभवशाली ।
द्रुपद जहां आसीन, व्योम में ज्यों करमाली[१४१] ।
आए कुम्भज मुदित, सखा की राजसभा में ।
समता जो कर रही, स्वर्ग की स्वर्णविभा में ।।६७।।

होकर दृप्त मदान्ध, द्रुपद ने की अवहेला ।
बालसखा-उपहास, तात ने दुस्सह झेला ।
कहा नृपति से निस्स्व, विप्र को दीन न जानो ।
सत्ता-वारुणिक्षीव[१४२], ज्ञान-गरिमा पहचानो ।।६८।।

तिरस्कार कर स्नेह, भावना का ऋजुता[१४३] का ।
आँक न पाये मूल्य, मित्रता का मृदुता का ।
ढँका आत्म आदर्श[१४४], विपुल भवरज है छायी ।
कनक-मुकुट को देख, पाण्डुदृगता है पायी ।।६९।।

छिन जाता है राज्य, लुप्त होती है सत्ता ।
मिट जाता है विभव, विगत होती बलवत्ता ।
अस्थिर है सम्मान, सफलता और महत्ता ।
ध्रुव रहती है कीर्ति, सुकृति नर की गुणवत्ता ।।७०।।

लौट पड़े फिर पिता, चिता उर में जलती थी ।
विद्या थी निरुपाय, उसे शठता छलती थी ।
अपमानित थे क्षुब्ध, ग्लानि से मन जलता था ।
आहत था अभिमान, गुणार्जव कर मलता था ।।७१।।

दुष्कर निश्चय किया, तभी यह भारी मन से ।
जुड़े आज से ज्ञान, राजकुल से अभिजन से ।
महारथी मम छात्र, धर्मपथ के अनुसर्त्ता ।
हरें बलोद्धत गर्व, बनें जग के उपकर्ता ।।७२।।

मुझे दिखाना है कि, ज्ञान सत्ता से भारी ।
केवल विद्यावान, जगत में यशअधिकारी ।
धनाभाव को धनिक, आज से दैन्य न समझें ।
बलवत्तापर्याय, मात्र बहु सैन्य समझें ।।७३।।

नहीं व्यक्तिगत प्रश्न, द्रोण का यह विमान[१४५] है ।
ज्ञानी को तो सदा, तुल्य मानापमान है ।
है समाज को किन्तु, बचाना अपकर्षण[१४६] से ।
उद्धत मत्त बलान्ध, जनों के अभिमर्षण से ।।७४।।

जिस समाज में ज्ञान, शील अपमानित होता ।
धन वैभव कौटिल्य, और बल मानित होता ।
है अदूरवर्ती क्षय, उसका यह निश्चय है ।
लक्षण इसके प्रकट, रोग का मुझको भय है ।।७५।।

कुरुकुमार-आचार्य, इस तरह तात बने थे ।
पाण्डुसुतों के हाथ, पिता के हाथ बने थे ।
पाँचों पाण्डव वीर, सुयोधन और दुशासन ।
सदा मानते शीश, झुका गुरु का अनुशासन ।।७६।।

आश्रम था यह विश्रुत, कहाँ पर पूर्व विमलता ।
विद्या के ही साथ, यहाँ थी विषम कुटिलता ।
कटु थी प्रतियोगिता, मधुर भ्रातृत्व नहीं था ।
राजनीति थी व्याप्त, दार्शनिक तत्व नहीं था ।।७७।।

गुञ्जित उनके शब्द, आज तक श्रोत्रयुगल में ।
वह ऊर्जस्वी मूर्ति, बसी है नेत्रयुगल में ।
झरता स्नेह असीम, सदा उस दीप्त वदन से ।
शत-शत शुभ आशीष, प्रसृत होते थे मन से ।।७८।।

कहते थे शिव और, शक्ति दोनों का अर्चन ।
करना सुत सायास, पराजित जग में दुर्जन ।
वीतराग बलयुक्त, बचा सकता है क्षय को ।
तुम्हें मिटाना है, शोषण आतंक अनय को ।।७९।।

आश्रित नृप पर हुई, जिस दिवस से शुभ शिक्षा ।
माँग उठे अनुदान, त्याग गुरु मान, तितिक्षा ।
विद्या विक्रय वस्तु, बने गुरु पटु व्यवसायी ।
चाटुकार हैं सफल, उपेक्षित अध्यवसायी ।।८०।।

रह तटस्थ देखता, मौन इसको यदि ज्ञानी ।
सफल हुए वैधेय[१४७], करेंगे फिर मनमानी ।
फैलेगा अज्ञान, ज्ञान को कर निर्वासित ।
राजभवन में बैठ, करेगा जन मन शासित ।।८१।।

आदृत होंगे वंश, और पद की जय होगी ।
होगा अनय प्रसार ,नीति अवमानित होगी ।
उद्यम अध्यवसाय, मान्य होंगे न जगत में ।
मात्र सुनेगें मनुज, त्याग तप दूर विगत में ।।८२।।

कुरुकुमार-आचार्य, बना हूँ यदि गजपुर में ।
यह मत लेना मान, लोभ छाया है उर में ।
भय है मुझको पुत्र, ज्ञान-विज्ञान-लुप्ति का ।
भारतभू से क्रमिक, आत्मचेतना-सुप्ति का ।।८३।।

वेद और विज्ञान, प्रसारण ध्येय हमारा ।
वांछनीय इस हेतु, लगा कुरुवंश सहारा ।
राजपुत्र इस भाँति, करूँगा पूर्ण प्रशिक्षित ।
विकसेगा विज्ञान, धर्म होगा परिरक्षित ।।८४।।

राजपुरुष अभिमान, विमर्दित आशु करूँगा ।
ज्ञानधनों का मान, सुनिश्चित कर ठहरूँगा ।
तम का विषम प्रसार, ज्ञानरवि से हरना है ।
एक नया विश्वास, विज्ञजन-उर भरना है ।।८५।।

सकल-शास्त्रनिष्णात, विरागी भी यदि द्विज को ।
अवमानित कर रहा, मान मनुजोत्तम निज को ।
सिंहासन आरूढ़, मूढ़ उन्मादी होकर ।
तो इसलिए कि ज्ञान, नपुंसक है बल खोकर ।।८६।।

विद्यार्जन तो करो, किन्तु होकर ऊर्जस्वी ।
तपो-निरत सायास, रहो दुर्धर तेजस्वी ।
सूक्ष्म बुद्धि हो किन्तु भीमवपु बल का आकर[१४८] ।
करो विपक्षी मौन, तर्क या तीर चलाकर ।।८७।।

यदि न नियन्त्रण रहा, विज्ञ का प्रभुसत्ता पर ।
आश्रित हुआ नरेश, मात्र निज बलवत्ता पर ।
तो स्वेच्छाचारिता, ग्रसेगी राजधर्म को ।
अनुमोदित सब क्लीव[१४९], करेंगे राजकर्म को ।।८८।।

शिक्षा हो व्यवसाय, और गुरु अर्धपठित हों ।
चारण बनकर विप्र, अवनिपति-चरण-लुठित हो ।
उस संस्कृति का नाश, पास ही जानो बालक ।
पदासीन बलवान, मूढ़ बनता जब पालक ।।८६।।

अत्याचार अनर्थ, कुशासन - जनित मिटाना ।
धर्मस्थापन हेतु पड़े, यदि शस्त्र उठाना ।
आक्रान्ता दुर्दम्य, त्वरित दण्डित करना हो ।
पीड़ित नरताभीति, और संकट हरना हो ।।६०।।

बल होता अनिवार्य, और विक्रम भी नर में ।
कर दे भय संचार, संगठित वैरि निकर[१५०] में ।
धनुर्वेद अतएव, मुझे लगता अति प्रिय है ।
बल विक्रम के विना, ज्ञान निष्प्रभ निष्क्रिय है ।।६१।।

भूपति वारण[१५१] हेतु, शास्त्र अङ्कुशवत् होता ।
अपना भव्य प्रभाव, लग रहा अव यह खोता ।
चाटुकार अल्पज्ञ, अर्थ इसके बतलाते ।
नृप मे ईश्वर अंश, बताकर लोक सताते ।।६२।।

घोषित करता नृपति स्वयं को जनप्रतिनिधि है ।
हो जाता जन भ्रान्त, बड़ी यह सफल प्रविधि है ।
सर्व दिशा से विपुल, सुनिश्चित करें धनागम ।
कहता मम-नयस्रोत, विपश्चित हैं या आगम[१५२] ।।६३।।

राजनीति से विवश, हुई शारदा हमारी ।
किया कर्ण को विमुख, आज मुझको दुख भारी ।
पाण्डुपुत्र हों श्रेष्ठ, प्रेष्ठ बस यह निश्चय था ।
विद्या की वंदिनी, हुआ संकीर्ण हृदय था ।।६४।।

वह हिरण्यधनुतनय, शिष्यकुल का भूषण है ।
मम अनर्थमय कृत्य, मात्र गुरुता-दूषण है ।
वह अनार्य भी श्रेष्ठ, पराजित है मन मेरा ।
अद्य प्रभृति[१५३] अंगुष्ठ, विषादित करे घनेरा ।।९५।।

आश्रम का वह द्रोण, देखता था हरि सब में ।
कितना है अवपात[१५४], उस समय में सुत अब में ।
तब मैं ज्ञान-सुगन्ध, पुष्पवत् था बिखराता ।
मणि समान अब गुह्य, कदाचित ही दिखलाता ।।९६।।

तब था योगी अनघ, राजसत्ता थी नीचे ।
अब अनुगामी विवश, जान कर भी दृग मीचे ।
तब था जगहित मुख्य, राज्यहित तक सिमटा हूँ ।
योगी से आचार्य, हुआ अनुदिवस मिटा हूँ ।।९७।।

सह कर क्रूर प्रहार, छिपी थी नीति वराकी[१५५] ।
भूतल का सब भार, हरा गुरु ने एकाकी ।
हैहय से कर दिए, विमर्दित खल अन्यायी ।
नरपति - अनुगामिता उन्हीं के वटु को भायी ।।९८।।

बलोद्धतों का गर्व, अखिल अर्दित करना हो ।
आक्रान्ता का शीश, भूमिमर्दित करना हो ।
तब विद्या के साथ, शौर्य आवश्यक होता ।
शक्ति विहीन समाज, ज्ञान संस्कृति को खोता ।।९९।।

विपथगामियों और, खलों को जब समझाना ।
हो जाए यदि विफल, शस्त्र तब वत्स उठाना ।
वेद और वर धनुष, उभय हों जगहितकर्ता ।
करो प्रसारित ज्ञान, बनो जग के भयहर्ता ।।१००।।

सभी बलों में श्रेष्ठ, आत्मबल जग में होता।
सुविधाभोगी किन्तु, शीघ्र ही उसको खोता।
नहीं अनयप्रतिकार, सुकर तब रह जाता है।
शठकृत - बहु - दुष्कर्म, विज्ञ भी सह जाता है।।१०१।।

जब अनीतिप्रतिकार, परम लगता है दुष्कर।
विवश सुधी के लिए, परम वह क्षण है दुखकर।
जिह्वा रहती मौन, चित्त रहता आन्दोलित।
खल का हर अपकर्म, हृदय करता उद्वेलित।।१०२।।

धरते तब पाखण्ड, स्वयं-भू सहृदय ज्ञानी।
रह तटस्थ देखते, धूर्तजनकृत मनमानी।
नीति प्रयोजनहीन, व्यर्थ होती सब विद्या।
मात्र जीविका-स्रोत, बने जो ज्ञान, अविद्या।।१०३।।

भाव नहीं थे यदपि, तात के इस आशय के।
विषमय किन्तु प्रभाव, पड़ गए राज्याश्रय के।
जिन बातों के रहे, सदा वे प्रबल विरोधी।
नहीं बन सके हन्त विषम क्षण में प्रतिरोधी।।१०४।।

आर्येतर[१५६] प्रति विषम, रहा पूर्वाग्रह मन में।
पक्षपात था और, राग उनका अर्जुन में।
मुक्तहस्तता नहीं रही विद्या - वितरण में।
शिष्य बनाते समय, खो गए कुल विवरण में।।१०५।।

शकुनिबुद्धि-उद्भूत, जुगुप्सित[१५७]नीति-विकृति पर।
कह न सके कुछ यदपि, रुष्ट युवराजनिकृति[१५८] पर।
कहते थे हो गया, रक्त उस दिन से पानी।
सभा मध्य हो मूक विलोकी खल मनमानी।।१०६।।

अनावरण वह नहीं, हुआ केवल कृष्णा[१५९] का ।
नहीं प्रदर्शन नग्न, मनुज की पशुतृष्णा का।
प्रतिहिंसा प्रतिकार, विकृत विग्रह धर आया ।
सघन तामसी मेघ, ज्ञानरवि पर था छाया ।।१०७।।

निर्वसना हो गई, आर्य सभ्यता पुरानी ।
रहे सभा में मौन, विक्रमी नर नयज्ञानी ।
हुआ अनावृत दम्भ, धर्म के परिपालन का।
भूल गए सब ज्ञान शस्त्र के परिचालन का ।।१०८।।

बँधा पा रहा विवश, स्वयं को मैं गजपुर से ।
द्वन्द्व न होता दूर, एक पल भी इस उर से ।
हुई व्यसन का केन्द्र, कभी गुणगण अगरी थी ।
शकुनिपुरी बन गयी, हस्ति की जो नगरी थी ।।१०९।।

नियति हुई निर्णीत, द्यूत के कटु कैतव[१६०] से ।
हुई कलंकित नीति, घृणित लाक्षागृह छल से ।
घातक ईर्ष्या द्वेष, बन्धुजन में अवलोका ।
किया नहीं प्रतिवाद, राजनिष्ठा ने रोका ।।११०।।

होता यदि सुविवेक, खड़े होते क्यों रण में ।
नहीं देखते श्रेय, अनयहित आत्ममरण में ।
सीखे बहुविध शास्त्र, नहीं कर्तव्य-विनिश्चय ।
कर पाये हम हन्त, मात्र अनुशय[१६१] का सञ्चय ।।१११।।

यदि न लोकव्यवहार्य, ज्ञान वह भार रूप है।
छद्म - ज्ञानभण्डार, तृणों से ढँका कूप है ।
आत्मवान ही यहाँ, कण्टकित - नयपथ चलता ।
यथा परिस्थिति इतर नीरवत् नर है ढलता ।।११२।।

तुम बलविद्यायुक्त, मुक्तपथ अपना चुनना ।
देश काल को भूल, हृदय के स्वर को सुनना ।
सिद्धान्तों को त्याग, मात्र सुविधा मिलती है ।
आत्मशक्ति पर कहाँ, समर्पण से खिलती है ।।११३।।

आत्मविकास महान, तुच्छ वपु की सुविधा से ।
नहीं श्रेय है प्राप्य, वस्तुचय श्री विविधा से ।
पुत्र ! यही है शेष, तुम्हें अब समझाने को ।
नहीं मिली यह देह, वित्त पद यश पाने को ।।११४।।

दोहा -

सब चलचित्र अतीत के, मात्र वेदनाहेतु ।
श्रेयस्कर है मिटाना, विगत स्मृति के सेतु ।।११५।।

कर यह निश्चय कृपीसुत, चले त्वरित मुख मोड़ ।
मुझको हो शमदायिनी[१६२], अब महेन्द्रगिरि-क्रोड़ ।।११६।।

सन्दर्भ सूची

१. उपदेश, २. उथली, कृशकाय, ३. चंदन, ४. पवन, ५. हाथी का मद जल, ६. बारंबर, लगातार, ७. नील गिरिता, ८. लोहा, ६. वियुक्त, १०. पुत्री, ११. सह्य पर्वत, १२. उच्चता, १३. तुंग नदी, १४. भद्रा नदी, १५. वियोग, १६. काले जल वाली, १७. कृष्णा नदी, १८. यमुना, १६. अनुकरण करने वाली, २०. जावा द्वीप, २१. थाइलैण्ड, २२. कम्बोडिया, २३. कमल, २४. पर्वत, २५. गज शावक, २६. मन्द वेग, २७. श्री कृष्ण की भार्या रुक्मिणी, २८. विदर्भ नरेश भीम की पुत्री, २६. कुश घास, ३०. सुख, ३१. नर्मदा, ३२. बलि बध वामन द्वारा भड़ौच में हुआ था, ३३. शंकराचार्य के गुरु गोविन्दपाद, ३४. अल्प जल वाली, ३५. निर्बल, ३६. अगस्त्य ऋषि, ३७. पर्वत, राजा, ३८. श्री कृष्ण ने यहीं सन्दीपनि से शिक्षापाई, ३६. विदीर्ण, ४०. रक्षक, ४१. हानि, ४२. प्रभास तीर्थ यहीं यादव वीर आपस में लड़ मरे थे, ४३. पांच महाकाव्यों में प्रमुख शिशुपाल वध के कर्ता, माघ कवि भीमकालके थे (यह गुजरात में है), ४४. शिशुपाल वध, ४५. भट्टि कवि ने भट्टि काव्य की रचना वलभी में की, ४६. सातवीं शती में अवन्ति पति यशोधर्मा ने हूणों को हराया, ४७. चंवल नदी, ४८. रन्तिदेव राजा जिन्होंने इसने

यज्ञ किए कि बलि पशुओं की खालें चम्बल में तैरने लगी, ४६. नदी का नाम चर्मण्वती हो गया, ५०. निर्दय, ५१. दण्डकारण्य महानदी यहीं से निकलती है, ५२. दुर्बल निस्सार, ५३. वैतरणी नदी जो उड़ीसा में बहती है, ५४. कोणार्क के सूर्य मन्दिर का सूर्यरथ, ५५. जगन्नाथ जी जो पुरी में है, ५६. परशुराम जी जो महेन्द्र पर्वत पर हैं, ५७. जरासंघ के आक्रमणों से त्रस्त हो कृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका गये, ५८. जरासंघ, ५६. चाणक्य, ६०. समृद्धि, ६१. आगार, ६२. सोन नदी, ६३. रक्तिमता, ६४. कृतकृत्य, ६५. शुद्धोधन पुत्र भगवान बुद्ध, ६६. गौतम बुद्ध का जन्म स्थल, ६७. बुद्ध उपदिष्ट साधना का मध्यम मार्ग, ६८. सहन शीलता, ६६. भगवान महावीर जो वैशाली के थे, ७०. केवल्य, मोक्ष, ७१. महावीर के पिता, ७२. कृतार्थ, ७३. आधुनिक भागलपुर पहले चंपापुरी थी, ७४. कर्ण का बचपन वहीं बीता, ७५. जनक के गुरु अष्टावक्र कहोड के पुत्र थे, ७६. अनुमान, ७७. स्वाभाविक, प्राकृतिक, ७८. सुन्दर उतार चढ़ाव वाले शरीर की सुंदरी, ७६. वलित पर्वत श्रृंखला, ८०. झुर्रियोंदार मुख वाली, ८१. मेघ, स्तन, ८२. बल पूर्वक, ८३. परलोक, ८४. प्रति प्रातः काल, ८५. बिना बाधा के, ८६. पीड़ादायक, ८७. असम को पहले प्राज्योतिष कहा जाता था, ८८. रक्त, ८६. परशुराम ने अपना परशु लोहित नदी में धोया, ६०. पूर्व दिशा, ६१. नरकासुर के शत्रु श्री कृष्ण, ६२. शिवजी के द्वारा निवसित, ६३. शिवजी, ६४. प्रभूत, प्रचुर, ६५. घिरा हुआ, ६६. जिसके लिए युद्ध न किया जा सके, ६७. उद्यान, ६८. गो - गाय, ६६. गो - वाणी, १००. गो - पृथ्वी, १०१. यमुना, १०२. वेगवान, १०३. गरुड़, १०४. दीर्घ, १०५. यमुना, १०६. विष - जहर, जल, १०७. जरासंध, १०८. हानि, दुर्भाग्य, विपन्नता, १०६. सभी प्राणियों को खाने वाला, ११०. अग्नि, १११. परशुराम, ११२. समंतक आदि पाँच सरोवर, ११३. पानीपत के तीनों युद्ध, ११४. पृथ्वी, ११५. सरस्वती नदी जो पंजाब में थी अब लुप्त हो गयी, ११६. नदियाँ, ११७. पंजाब प्रदेश, ११८. तीक्ष्ण पंजों वाले, ११६. नृसिंह भगवान, १२०. निष्प्राण, १२१. हिरण्यकशिपु, १२२. गंगा, १२३. इन्द्र, १२४. प्रलय काल के मेघ, १२५. मोर, १२६. अर्जुन वृक्ष, १२७. अमावस्या, १२८. गंभीर, भारी, डरावना, १२६. नेवला का समूह, १३०. श्रेष्ठ योद्धा, दुर्योधन, १३१. जल, धन, कर्ण, १३२. चित्तीदार हिरण, १३३. पक्षी, १३४. रेत, १३५. मानदण्ड, आदर्श, १३६. अनुल्लंघनीय, १३७. शिष्य, १३८. जीवात्मा का वह मार्ग जिससे इसे पुनः संसार में आना पड़ता है, १३६. दुखी, १४०. जौं का आटा, १४१. सूर्य, १४२. मदमत्त, १४३. सरलता, १४४. दर्पण, १४५. अपमान, १४६. अवनति, १४७. मूर्ख, १४८. भण्डार, १४६. नपुंसक, १५०. समूह, १५१. हाथी, १५२. शास्त्र, १५३. आज तक, १५४. पतन, १५५. बेचारी, १५६. आर्य भिन्न, १५७. घृणित, १५८. कुकर्म, १५६. द्रौपदी, १६०. छल, १६१. पश्चाताप, १६२. शान्ति देने वाली।

❖